छोटानागपुर के पर्व-त्यौहार

देश के अन्य भागों की हीं तरह छोटानागपुर में भी मेला-त्योहारों का विशेष महत्व था। यहाँ की जनजातियों तथा सदानों के पर्व-त्यौहाों में प्राय: एकरूपता थी, यद्यपि स्थानीय विभेद भी देखने को मिलते थे। इस क्षेत्र में संथालों की संख्या बहुत

---

1. ए० लूकर, माई इंडिया, पृ० 84, 127.
2. ए० लूकर, माई इंडिया, पृ० 34.
3. आर० आर० दिवाकर, बिहार थ्रू द एज़ेस, पृ० 503.
4. ए० लूकर, वही, पृ० 345

Scanned with CamScanner

अधिक नहीं थी, फिर भी उनके उत्सवों-त्योहारों में भी विविधता थी। संथाल समारोह सामूहिक थे। गाँव का 'नायक' ही सभी लोगों की ओर से व्रत रखता था। पूजा-अर्चना भी वही करता था। आयोजित नृत्य-संगीत में सभी भाग लेते थे। सभी पर्वों के लिए निर्धारित तिथियाँ थीं। किन्तु प्रत्येक गाँव अपनी सुविधा के अनुसार इन विधियों में परिवर्तन कर सकता था। संथाली वर्ष आषाढ़ में प्रारम्भ होता था, अतः इनके त्यौहार भी इसी मास से शुरू होते थे।

एरोक, हरियाड़, जापाड़, सोहराय, साकरात, भागासिम और बाहा संथालों के प्रमुख त्यौहार थे। एरोक बीच बोने का त्यौहार था जो आषाढ़ में मनाया जाता था। "जाहेरथान" में देवी-देवताओं के नाम से मुर्गी की बलि दी जाती थी और बीच के बढ़िया से लगने के लिए प्रार्थना की जाती थी। इस अवसर पर सबों को प्रसाद के रूप में खिचड़ी बंटती थी। श्रवण मास में धान में हरियाली आ जाने पर हरियाड़ पर्व मनाया जाता था। इस पर्व में भी अच्छी फसल के लिए प्रार्थना की जाती थी। अगहन मास में जापाड़ पर्व आता था। इस अवसर पर जाहेरथान में सुअर की बलि दी जाती थी। सहभोज में केवल पुरुष भाग लेते थे और खेत-खलिहान में समृद्धि के लिए प्रार्थना करते थे। धान की फसल कट जाने के बाद मनाया जाने वाला सोहराय संथालों का सबसे बड़ा पर्व था। इस अवसर पर देवी-देवताओं, पितरों तथा गोधन को संतुष्ट करने के अतिरिक्त सगे-संम्बंधियों को भी सम्मानित किया जाता था। यह वस्तुतः 5 दिनों का पर्व था। जिसमें प्रथम दिन स्नान के बाद 'गोड टाण्डी' (बथान) में 'जोहर एरा' का आह्वान किया जाता था। मुर्गे की बलि देकर सिर तथा पेट दर्द एवं झगड़ों से मुक्ति मांगी जाती थी। हंड़िया सेवन के साथ-साथ नृत्य-संगीत का आयोजन होता था। रात में युवक-युवतियों के दल धूप-दीप, धान चावल और दुर्वा लेकर प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ गो-पूजन को जाते थे। दूसरे दिन 'गोहाल पूजा' होती थी। जिसमें गोशाला को साफ कर उसने उल्पना द्वारा सजाया जाता था, गायों के पैर धोये जाते थे; उनकी सिंगों पर तेल-सिन्दूर लगाया जाता था, पितरों तथा देवी-देवताओं को मुर्गे अथवा सुअरों की बलि दी जाती थी तथा हंड़िया चढ़ायी जाती थी। उस दिन विवाहित लड़कियाँ भी अपने मैके आ जाती थीं। तीसरे दिन 'संण्टाऊ' होता था। 'मांझी', 'परानिक' आदि से साधारण गृहस्थ तक अपने पशुओं को धान की बाली तथा मालाओं आदि से सजाकर 'खुँटते' तथा बाजा-गाजा के साथ, सामूहिक रूप से उन्हें भड़काते हुए, घंटा-दो घंटा नांचते कूदते थे। इसके बाद पशुओं को 'गोहाल' ले जाते थे और सभी अपनी घरों में हंड़िया पीते थे। चौथे दिन 'जाले' होता था। इन दिन युवक-युवतियों का दल प्रत्येक

Scanned with CamScanner

गृहस्थ के यहाँ नाच-गाकर थोड़ा बहुत चावल, दाल नमक तथा मसाले आदि इकट्ठा करता था। पाँचवों दिन 'जोग मांझी' की देखरेख में उपर्युक्त चीजों की खिचड़ी पकती थी। सहभोज होता था। हंड़िया पी जाती थी और सोहराय पर्व सम्पन्न कराने का जोग-मांझी का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता था।

सोहराय के बाद पूस के अंतिम दिनों में 'साकरात' का त्यौहार मनाया जाता था। पहला दिन गाँव के आस-पास ही मछलियाँ, केकड़े, चूहों अथवा वन्य पशुओं को पकड़ा जाता था, जिनकी बलि 'माराङ बुरू' तथा पितरों को दी जाती थी तथा घर-परिवार की कुशलता के लिए प्रार्थना की जाती थी। माघ मास में 'भागसिम' का पर्व आता था। इसमें एक निश्चित दिन किसी जलाशय के पास देवी-देवताओं के नाम मुर्गी की बलि दी जाती थी। गाँव के ओहदेदारों को अगले वर्ष के लिए ओहदों की स्वीकृति दी जाती थी।[1]

संथालों का दूसरा महत्वपूर्ण पर्व 'बाहा' फाल्गुन मास में आता था। यह तीन दिनों का पर्व था। पहला दिन स्नान-ध्यान का। दूसरा दिन धूप, दीप, सिन्दूर, जल, दूर्वा, हंड़िया, महुआ, अथवा सखुआ के फूलों के साथ 'जोहेरथान' के देवी-देवताओं की पूजा का था। तीसरा दिन 'नायके' का चरण-प्रक्षालन तथा बदले में सखुआ फूलों की प्राप्ति का था। इसके बाद शुद्ध जल की होली खेली जाती थी।

हो लोगों के सात प्रमुख पर्व थे माघी, बाहा, उमुरी, होरो, जोमनना, कोलोम और बतौली, इनके अलावा हिन्दुओं की देखा-देखी छठ, दिवाली, दशहरा और चैती पर्व भी मनाये जाते थे। महादेव, लक्ष्मी तथा काली की पूजा इन्हे हिन्दू पड़ोसियों की देन थी। इनके अधिकांश पर्व कृषि-कर्म से सम्बद्ध थे तथा जोतने, बोने अथवा काटने के साथ। माघी पर्व प्रेम-प्रदर्शक का था। इसमें 'माघीराग' गीत गाये जाते थे। पाँच दिनों की यह वृहत् पूजा अत्यंत पवित्र मानी जाती थी।

छोटानागपुर की प्रमुख जनजातियों में मुंडाओं के पर्व भी धर्म अथवा कृषि से सम्बद्ध थे। इनके पर्वों में सरहुल, करम, सोहराई, बुरू, माघे तथा फागू प्रमुख थे। अप्रिल मास में मनाया जानेवाला सरहुल वसन्तोत्सव था। कृषि-कर्म इसी पर्व के उपरांत शुरू होते थे। चार दिनों के इस पर्व में प्रथम दिन मछली से अभिषिक्त जल का घर-आंगन में छिड़काव होता था। दूसरा दिन उपवास, सखुआ के नव-पल्लव के लाये जाने, सरना में 'लुटकूम हड़म' तथा 'लुटकूम बुढ़ी' की पूजा तथा सिंग बोंगा, देशावली तथा ग्राम-बोंगा के आमंत्रण का था। तीसरे दिन सखुआ-फूल को सरना में

1. राँची एक्सप्रेस, 24 अक्टूबर, 1986.

Scanned with CamScanner

प्रतिष्ठापित किया जाता था। पाहन हंड़िया, चावल, सिन्दूर, धूअन, तीन रंगों की मुर्गियों को चढ़ाकर सिंग बोंगा, सरना देवी, लुटकूम हड़म, लुटकूम बुढ़ी, ग्राम बोंगा, देसावली, बुरूबोंगा तथा इकीर बोंगा आदि को आमंत्रित करता था। सिंग बोगा के नाम सफेद मुर्गी, इकीरबोंगा के नाम लाल मुर्गी तथा सरना देवी के नाम कुर्थी रंग की मुर्गी की बलि दी जाती थी। उपस्थित जन में सरहुल फूल तथा हंड़िया का प्रसाद के रूप में वितरण किया जाता था। बलि चढ़ायी गयी मुर्गी तथा चावल की खिचड़ी (लेटे) सरना देवी पर चढ़ाने के बाद ग्रामवासियों में वितरित की जाती थी। सरना स्थल में महिलायें पूजन में शामिल नहीं होती थी और न गाँव की विवाहित कन्याओं को लेटे का प्रसाद दिया जाता था। तीसरा दिन "अखरा" में सबों के नाचने का था। चौथा दिन वितरित सरहूल फूल का विसर्जन किया जाता था। कहीं-कहीं तीसरा दिन ही फूल-विसर्जन हो जाता था।

सरहुल वस्तुतः छोटानागपुर की सभी जनजातियों का पर्व था, यद्यपि विभिन्न जातियों ने इसका अलग-अलग नाम दे रखा था जैसे, उरांव इसे खट्टी तथा खड़िया जकोर कहते थे। स्पष्ट है कि पर्व जंगलों के प्रति जनजातियों के लगाव का पर्व था। यह सूर्य और पृथ्वी के मिलन का पर्व था। सूर्य की शक्ति अर्थात पुरुष का और पृथ्वी प्रकृति अर्थात नारी की प्रतीक थी। इन दोनों की संतान मनुष्य को फसल की प्राप्ति हो—पर्व का यही लक्ष्य था। वस्तुतः आर्य वसंतोत्सव का यह जनजातीय रूप था। कुछ जनजातियों ने इसे होली, कुछ ने पोंगल तथा कुछ ने टुसु पर्व कहा। मुंडा समाज में सरहुल से सम्बद्ध कई दंत-कथाएँ प्रचलित थीं।[1]

करमा अथवा कर्मा पर्व मुंडा-उरांवों में समान रूप से लोकप्रिय था। भाद्र मास की एकादशी के दिन मनाया जाने वाला यह पर्व कर्मा तथा धर्मा भाइयों की कथा पर आधारित था। मुंडाओं में करमा पर्व की दो श्रेणियाँ थीं—राज करम तथा देश करम। राज करम व्यक्तिगत रूप से घर-आंगन में मनाया जाता था जबकि देश करम गाँव के अखरा में मनाया जाता था। दोनों में विधियाँ प्रायः एक जैसी ही होती थीं। राज करम मनाने वाले परिवार का मुखिया परिवार के युवक-युवतियों के साथ उपवास रखती थीं। यही बहनें तथा घर की औरतें दीपक तथा पूजन-सामग्री के साथ पूजन-स्थल पर पाहन अथवा अन्य कथा-वाचक से करम-कथा सुनती थी। पूजा-स्थल घर का आंगन था जहाँ करम की दो डालियाँ गाड़ कर पूजा की जाती थी। पूजा के लिए सभी

1. जे०ए०एस०बी०; जिल्द 30 (1934),एन०के० बसु और के०पी० चट्टोपाध्याय मुंडा फेस्टिवल्स ऑफ छोटानागपुर; राँची एक्सप्रेस, अप्रैल 1987; 20 मार्च 1988.

Scanned with CamScanner

ग्रामवासियों को आमंत्रित किया जाता था। सूर्योदय से पूर्व ही करम-डाली को निकटतम नदी अथवा तालाब में विसर्जित किया जाता था।

करम-पूजा से सम्बद्ध एक प्रमुख प्रथा थी कन्याओं द्वारा एकादशी से 7, 5 अथवा 3 दिन पूर्व से ही बालू भरी टोकरी में कुर्थी जौ आदि की जवा उगाने की प्रथा। इस टोकरी को एकादशी के दिन पूजा-स्थल में रखा जाता था। जवा को प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता था। राज करम पारिवारिक पूजा थी जबकि देश करम अखरा में गाँव की सामूहिक पूजा थी। सामूहिक पूजा में दीपक, धुअन, अगरबत्ती, दूध, चूड़ा तथा सिंदूर प्राय: सभी परिवारों से लाया जाता था। मुंडाओं का विश्वास था कि इस अवसर पर करम गोसाई से जो भी वर मांगा जाता था, उसकी प्राप्ति हो जाती थी।

उरांवों में कर्मा पर्व का रूप थोड़ा भिन्न था। एक अंडा रख कर पूजा की जाती थी। पूजनोपरांत अंडे को उसी चावल के साथ सिद्ध कर चढ़ाया जाता था और कुछ प्रसाद स्वरूप वितरित किया जाता था। इस अवसर पर धान के खेत में सखुआ, सिंदूआर अथवा मेलवा की डाली गाड़ी जाती थी। कर्मा की शाम 'सायंजोत' कही जाती थी। सायंजोत में करम की तीन डालियाँ अखरा स्थित पूजा-स्थल में गाड़ दी जाती थी। अखरा में पहुँचने से पहले पाहन के घर इन डालियों की पाहन की पत्नी द्वारा सिंदूर लगा तथा पानी छिड़क कर पूजा की जाती थी। मनपसन्द वर अथवा वधू की प्राप्ति के लिए युवक-युवतियाँ उपवास रख 'नचवा' में चूड़ा, खीरा तथा दीपक पेकची के पत्ते से ढककर अखरा में रखते थे और अभिष्ट की पूर्ति की कामना करते थे। इसी रात पाहन करमा-धरमा की कहानी सुनाता था। कथा-श्रवणोपरांत लोग घर जाते थे। उस रात गाँव से कोंहड़ा-कद्दू, बकरा-बकरी, मुर्गा-मुर्गी चुसकर में पकाने खाने की भी मनाही नहीं थी। अगले दिन अखरा से करम-डाली को उखाड़ कर सबसे पहले पाहन के यहाँ ले जाया जाता था। पाहन तथा उसकी पत्नी करम डाल की विधिवत पूजन कर विदाई करते थे। शेष लोग डाल को स्पर्श कर रोगमुक्त होने की प्रार्थना करते थे। अंतत: करम-डाल को नदी अथवा तालाब में विसर्जित कर दिया जाता था।

कर्मा पूजा आदिवासियों सदा सदानों में समान रूप से लोकप्रिय थी। छोटानागपुर के कुछ भागों में प्रत्येक तीसरे वर्ष 'बूढ़ी कर्मा' मनाने की प्रथा थी। इसमें केवल वृद्धाएँ भाग लेती थीं– विशेषत: अकाल पड़ने पर। स्पष्ट है कि सरहुल की तरह कर्मा-पूजा भी छोटानागपुर की जनजातियों की एक प्रमुख पूजा

Scanned with CamScanner

थी। उल्लेखनीय है कि कुरमाली क्षेत्रों में कुर्मी कन्याएँ रक्षा-बंधन की जगह करमा पर्व को ही मनाती थीं।[1]

मुंडा जनजाति द्वारा मनाया जाने वाला अन्य पर्व था- बुरू पर्व अर्थात पर्वत-पूजा। अगहन मास में सबसे पहले "मारांग बुरू" (सबसे बड़ा पहाड़) की पूजा होती थी। प्रत्येक क्षेत्र का अपना "मारांग बुरू" था, जैसे राँची क्षेत्र के लोगों का सोनाहातु में। हिन्दू कैलाशवासी शिव की उपासना करते थे। संभवतः जनजातियों ने उन्हीं का अनुकरण करते बुरू-बोंगा (पहाड़ देवता) की पूजा शुरू की होगी। पाहन पहाड़ देवता को हंड़िया अर्पित करता था। पुरुष समुदाय जुलूस निकालता था। लिंग-योनि की जय-जयकार भी शैव प्रभाव की ओर इंगित करता है। यह पर्व तीन दिनों का था। प्रथम दिवस सखुआ की पत्तियाँ तोड़ी जाती थीं और सरना की सफाई की जाती थी। दूसरा दिन उपवास का और तीसरा दिन पूजन का होता था। चावल की रोटी पत्ती में लपेटकर पकायी जाती थी। इसी रोटी और चूड़ा का प्रसाद चढ़ता था।

माल पहाड़िया की तरह मुंडा भी माघे पर्व मनाते थे। इस अवसर पर जतरा का आयोजन होता था। सभी गाँवों के लोग अपना-अपना झंडा लेकर निकलते थे। इस तरह एक मेला का आयोजन हो जाता था। हंड़िया के अतिरिक्त पूड़ी तथा पकवान इस पर्व को मकर संक्रांति के रूप में मनाते थे। इसमें चूड़ा-दही खाने की परिपाटी थी। हिन्दुओं की होली की तरह फाल्गुन मास में फागू पर्व मनता था। गाँव के बाहर सेमल की डाली गाड़कर उसे जलाये जाता था और पुनः टुकड़ों में काटा जाता था। पाहन ग्राम देवता को काली मुर्गी चढ़ाकर उसे झाड़ी में फेंकता था जिससे गाँव में दुरात्माओं का प्रवेश न हो। इस अवसर पर नाच-गान, खान-पान की व्यवस्था की जाती थी। पलाश फूल का रंग एक-दूसरे पर फेंका जाता था।

उरांवों का खद्दी पर्व अप्रिल में आता था। अच्छी फसल के लिए धन्यवाद-ज्ञापन तथा नई फसल भरपूर होने की कामना का यह पर्व, उपवास के साथ सरना में सम्पन्न होता था। सफेद-लाल मुर्गियों की बलि पाहन द्वारा चढ़ायी जाती थी। बाद में चावल के साथ इसकी "मुड़ी" पकायी जाती थी। और प्रसाद के रूप में वितरित की जाती थी। इस पूजा में पाहन के अतिरिक्त महतो, सुसारी, पनभरवा और ग्रामीण पुरुष भाग लेते थे। स्त्रियों के भाग लेने की मनाही थी। पूजनोपरान्त पाहन को कंधे पर बैठाकर गाते-बजाते गाँव लाया जाता था। उसके घर की औरतें उसके पैर धोती थी। गाँववाले

1. राँची एक्सप्रेस, 14 सितम्बर, 1986; 4 सितम्बर, 1987,22 सितम्बर, 1988.

Scanned with CamScanner

पर्व के उपलक्ष्य में नाचते-गाते थे। उसके घर की सभी वस्तुओं पर सरहुल का फूल चढ़ता था। नये फलों-सब्जियों का प्रथम बार सेवन होता था। दूसरे दिन गाँववालों का आपस में मिलन होता था। पर्वों के अवसर पर नवविवाहित युवक ससुराल में निमंत्रित किये जाते थे। यही महिलाएँ अलग से नाचती थीं। इनके नृत्य में पुरुष शामिल नहीं होते थे। यही महिलाएँ पारी-पारी से पाहन, महतो, पनभरवा तथा सुसारी के घर जाती थीं जहाँ उन्हें कुछ-न-कुछ खाने-पीने को मिलता था। यह व्यवस्था उस भूमि की फसल से की जाती थी जो इन व्यक्तियों को कर रहित मिली रहती थी।

माघी पूर्णिमा के दिन उरांवों द्वारा मनाया जानेवाला चांडीपर्व संभवतः चंडी पूजा थी। इसमें स्त्रियाँ, कन्याएँ तथा गर्भवती महिला के परिवार के पुरुष भाग नहीं लेते थे। यह पर्व मुख्यतः युवकों का पर्व था जिसमें चांडी देवता को बकरा तथा सफेद-लाल मुर्गियों की बलि दी जाती थी। बकरा तथा मुर्गियों का मांस चावल में मिश्रित कर पकाया जाता था और प्रसाद स्वरूप ग्रहण किया जाता था। मुख्यतः युवा वर्ग का पर्व होने के कारण यह आनन्दोत्सव का रूप ले लेता था।

उरांव जनजाति की ख्याति जतरा के लिए भी थी। जतरा का आयोजन जेठ, अगहन तथा कार्तिक मास में होता था। इन महीना में कृषि कार्य से मुक्त होने के कारण जतरा के लिए स्वतः समय मिल जाता थ। इस अवसर पर पाहन धर्मेश की पूजा करता था। नाच-गान में बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी शामिल होते थे। अगहन जतरा के समय का मांडर के निकट मुंडमा मेला प्रसिद्ध था। देउथान जतरा की विशेषता थी कन्याओं द्वारा धान की बाली युक्त कलश का सिर पर रख कर जतरा टांड़ तक ले जाना। शाम तक जतरा-स्थल की गहमा-गहमी आनन्दोत्सव का रूप ले लेती थी।

खरवार, बेदिया तथा चेरो आदि जन-जातियों में हिन्दुओं की तरह दशहरा, छठ, होली, दीवाली तथा रामनवमी मनाने की परिपाटी थी। यहाँ हंड़िया, मुर्गी तथा खस्सी की जगह दूध, फल तथा मिष्ठान्न की पूजन-सामग्री के रूप में प्रधानता थी।

छोटानागपुर की पिछड़ी जातियों की चड़क पूजा अन्य पर्वों से सर्वथा भिन्न थी। सिंहभूम तथा मानभूम क्षेत्र में इसका विशेष आयोजन होता था। इस पूजा में सारी रात गाँव के लोग मंदिर के निकट एकत्रित होते थे और वहाँ एक मेला सा लग जाता था। गाँव वालों का विश्वास था कि पूजा के दिन भोक्ता के शरीर में शिव-शक्ति आ जाती थी। फलवरूप वह भीषण पीड़ा के बावजूद जिन्दा बच जाता था। इस पूजा के दौरान भोक्ता को पीठ तथा बाँह में लोहा की मोटी सूई से छेद कर एक रस्सी पार

Scanned with CamScanner

की जाती थी। इसी रस्सी के सहारे उसे 5 से 7 मीटर ऊँचे लकड़ी के क्रॉस पर लटकाया जाता था। इस बीच उसकी पत्नी सिर पर पीतल के लोटे में पानी और आम्र-पल्लव लिये खड़ी रहती थी। क्रॉस से उतारे जाने पर भोक्ता को यही जल पिलाया जाता था।

क्रॉस के नीचे 4 चक्के लगे होते थे। जिनके सहारे भोक्ता के शरीर को एक वृत्त में घुमाया जाता था। क्रॉस पर लटका भोक्ता पैसे तथा मिठाइयाँ बाँटता रहता था जिन्हें लोग प्रसाद-स्वरूप ग्रहण करते थे। क्रॉस को गाँव में घुमाया जाता था और यह उन्हीं घरों के सामने ठहरता था जहाँ बलि चढ़ाने की तैयारी रहती थी। ऐसे घरों के सामने चबूतरे को गोबर से लीप कर तैयार रखा जाता था। खूटे में बंधे बकरे की बलि दी जाती थी गाँव के प्राय: 90 प्रतिशत घरों में बलि की तैयारी रहती थी।

अब शुरू होता था आग पर चलने का सिलसिला। भूमि पर 35-35 सेंटीमीटर की दूरी पर 16 सेंटीमीटर गड्ढे बनाये जाते थे। इन गड्ढों में अंगारे भरे जाते थे। भक्त इन्हीं अंगारों पर भक्ति भाव से चलते थे। किसी के पैरों में छाले नहीं पड़ते थे। पलामू में इस विधि को आर-खांड कहते थे। इस अवसर पर किसी भी जाति का भक्त यज्ञोपवित घारण कर सकता था। रात में भोक्ता निकटतम तालाब तक दीप लेकर जाते थे और स्नान करते थे। स्नान के बाद प्रमुख भोक्ता की "शव-यात्रा" निकाली जाती थी। इसके लिए बांस की "टिकटी" बनती थी जिसमें नीचे से कीलें लगी रहती थीं। ये कीलें भोक्ता के शरीर में चुभती थी। "शव" को सम्पूर्ण ग्राम में घुमा कर मंदिर लाया जाता था। साथ-साथ बांस तथा पारंपरिक हथियारों से लैश सैकड़ों ग्रामीण चलते थे। अनेक छठ-व्रतियों की तरह तालाब से मंदिर तक पेट के बल दंडवत करते पहुँचते थे। मंदिर पहुँच कर चड़क पूजा का समाजन होता था।[1]

Scanned with CamScanner

औद्योगीकरण का जनजातियों पर प्रभाव

स्पष्ट है कि ब्रिटिश काल में छोटानागपुर में विभिन्न उद्योगों का सीमित विकास ही संभव हुआ। यहाँ के लोग विशेषत: जनजातियों की समृद्धि बढ़ी तो नहीं, किन्तु उनके नैतिक मूल्यों का अवश्य ह्रास हुआ। औद्योगीकरण से ऐसी समस्यायें उठ खड़ी हुई जिन्होंने प्रारंभिक जनजातीय समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। भूमि के अधिग्रहण और विस्थापित परिवारों के पुनर्वास से कई समस्यों खड़ी हुई। जैसे– भारी संख्या में आव्रजन। एक अन्य समस्या थी– कृषि प्रधान जीवन से औद्योगिक जीवन में रूपान्तरण– जिसे अधिकांश जनजातियों ने अस्वाभाविक पाया। नई परिस्थितियों में अपने आप को ढालने में आदिवासी अक्षम थे और उनमें कई दुर्गुण पनपे जैसे अपराधीकरण। औद्योगीकरण क्रिया-कलापों से उनके स्वास्थ्य में गिरावट आयी और सरकार उन्हें आवश्यक चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने में भी असफल रही। जनजातीय अर्थ व्यवस्था मूलत: पारस्परिक सहयोग पर आधारित थी। इसमें भी बिखराव आने लगा। सहकारिता आन्दोलन को भी जनजातियों के समवेत विकास के लिए भी कोई विशेष कोशिश नहीं की गयी। सरकार अथवा औद्योगीकरण ईकाइयों द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का लाभ भी आदिवासी नहीं उठा सके क्योंकि इनकी जानकारी देने के लिए कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। सरकार अथवा औद्योगिक

Scanned with CamScanner

ईकाइयों ने किसी ऐसे तंत्र का विकास नहीं किया जो आदिवासियों का समवेत अथवा समुदाय विशेष के रूप में विकास कर सकता। उद्योगों के लिए ली गई जमीन का मुआवजा भी आदिवासियों ने खा-पीकर उड़ा दिया। इस तरह औद्योगीकरण ने उन्हें अंततः दरिद्र बना कर छोड़ दिया। औद्योगीकरण का विचित्र प्रभाव यह पड़ा कि आदिवासियों में बेरोजगारी बढ़ी रोजगार के सभी अवसर बाहर से आए गैर-आदिवासियों ने हथिया लिये। आदिवासियों में बेरोजगारी अल्पकालिक अथवा स्थायी थी। अल्पकालिक बेरोजगार आदिवासी बंगाल तथा असम के अतिरिक्त सुदूर ब्रिटिश उपनिवेशों तक रोजी-रोटी की तलाश में पहुँचने लगे। यह एक विचित्र बात थी कि एक ओर आदिवासियों में बेरोजगारी बढ़ी और दूसरी ओर सरकार कहती रही कि रोजगार पाने लायक आदिवासियों को संख्या अपर्याप्त थी। औद्योगीकरण ने नगरीय प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर व्यक्तिवादी लाभ की भावना, अनावश्यक प्रतियोगिता, घनी बस्तियों, औपचारिक संबंधों तथा भौतिक आकर्षणों को जन्म दिया। परम्परागत आदिवासी अर्थव्यस्था में आदिवासियों का एक बहुत बड़ा भाग कुटीर उद्योगों पर निर्भर था, किन्तु औद्योगीकरण के फलस्वरूप बड़ी मात्रा में उत्पादन में प्रतिस्पर्धा न कर पाने के कारण आदिवासी कुटीर उद्योग नष्ट होते गये।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप जनजातीय गाँवों में परम्परा तथा आधुनिकता का संघर्ष देखने को मिला। बुजुर्गों का प्रभाव घटता गया। ग्रामीण संस्कृति एवं नैतिकता का ह्रास हुआ। परहा पंचायत तथा गाँव पंचायत का प्रभाव घटा। राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ। राज्य के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि हुई। राजनैतिक दलों का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ा। गैर-आदिवासी राजनेता हावी होते गये। धर्म, प्रथा तथा परम्परा का प्रभाव घटने के कारण सांस्कृतिक अस्थिरता आयी। ये सभी परिवर्तन सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं थे। औद्योगीकीण केन्द्रों के निकटवर्ती इलाकों में परिवर्तन की गति तीव्र थी। दूरस्थ इलाकों में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन हुए।

ऐसा नहीं है कि औद्योगीकरण के सभी प्रभाव नकारात्म ही थे। आदिवासी समुदाय की परम्परागत सामजिक संरचना में सकारात्मक परिवर्तन भी हुए। कल-कारखानों में काम करने वाले कामगारों के बीच जाति निरपेक्षता तथा नगरीय मूल्यों के प्रसार के कारण खान-पान तथा व्यावसायिक विभाजन के प्रतिबंधों में व्यापक परिवर्तन हुए। जनजातियों के प्रति सामाजिक दूरी घटी। नातेदारी की अपेक्षा मित्रता तथा सहयोग को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अंतर्जातीय विवाहों को भी बढ़ावा मिला। धार्मिक

Scanned with CamScanner

कट्टरता की जगह धार्मिक सहिष्णुता ने लेना शुरू किया। धार्मिक कार्यों एवं व्यवहारों की व्याख्या अब लौकिक आधार पर भी होने लगी। परम्परागत अंधविश्वासों की जगह अब तर्क और बौद्धिकता को महत्व दिया जाने लगा।[1]

Scanned with CamScanner